Role of tribal tribes of Jharkhand in India's freedom struggle

भारत की स्वतंत्रता संग्राम में झारखंड की आदिवासी जनजातियों की भूमिका

ओम प्रकाश महतो[1], डॉक्टर ममता कुमारी[2]

[1] शोधकर्ता, इतिहास विभाग, राधा गोविंद विश्वविद्यालय, रामगढ़ झारखंड

[2] सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, राधा गोविंद विश्वविद्यालय, रामगढ़ झारखंड

सारांश

झारखंड की आदिवासी जनजातियों ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ब्रिटिश शासन और सामंती व्यवस्था के खिलाफ संघर्षरत इन जनजातियों ने अपनी सांस्कृतिक और सामाजिक पहचान को बनाए रखने के लिए लगातार विद्रोह किया। संथाल विद्रोह (1855-56), मुंडा विद्रोह (1899-1900), कोल विद्रोह (1831-32), और ताना भगत आंदोलन (1914-1920) जैसे प्रमुख आदिवासी आंदोलनों ने न केवल ब्रिटिश शासन को चुनौती दी, बल्कि सामंती और जमींदारी व्यवस्था के शोषण के खिलाफ आवाज उठाई। इन विद्रोहों का उद्देश्य केवल राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं था, बल्कि आदिवासी भूमि, संसाधनों और सांस्कृतिक पहचान की रक्षा करना भी था। बिरसा मुंडा जैसे महान नेता ने अपने नेतृत्व में न केवल आदिवासी समाज को संगठित किया, बल्कि उन्हें सांस्कृतिक और धार्मिक पुनरुत्थान की दिशा में भी प्रेरित किया। उनके नेतृत्व में मुंडा विद्रोह ब्रिटिश नीतियों और मिशनरी गतिविधियों के खिलाफ एक महत्वपूर्ण संघर्ष बना। इसी तरह, सिद्धू और कान्हू मुर्मू के नेतृत्व में संथालों ने ब्रिटिश अधिकारियों और जमींदारों के शोषण के खिलाफ सशस्त्र विद्रोह किया। इन विद्रोहों में शामिल जनजातीय नेताओं ने स्वतंत्रता आंदोलन को एक नई दिशा दी और आदिवासी समाज में स्वतंत्रता और स्वायत्तता की भावना को प्रबल किया। इन आंदोलनों का प्रभाव स्थानीय स्तर पर ही नहीं, बल्कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन पर भी पड़ा। झारखंड की जनजातियों के संघर्ष ने ब्रिटिश सरकार को भूमि अधिकार और आदिवासी संरक्षण से संबंधित कई सुधारों को लागू करने पर मजबूर किया, जिससे स्वतंत्रता के बाद आदिवासी अधिकारों के लिए एक मजबूत नींव तैयार हुई।

प्रमुख शब्द : - *स्वतंत्रता संग्राम, जनजातीय योगदान, झारखंड, आदिवासी विद्रोह*

1. परिचय

औपनिवेशिक भारत में झारखंड की जनजातियों का ऐतिहासिक संदर्भ झारखंड, जो अपनी समृद्ध प्राकृतिक संसाधनों और घने जंगलों के लिए प्रसिद्ध है, लंबे समय से संथाल, मुंडा, उरांव और हो जैसी विभिन्न जनजातियों का घर रहा है। ये जनजातियां अपनी सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक प्रथाओं में विशिष्ट थीं और पूर्व-औपनिवेशिक भारत की संरचना में एक अनूठी स्थिति रखती थीं। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के आगमन के साथ, झारखंड की जनजातीय समुदायों का शोषण आर्थिक और सामाजिक दोनों रूप से बढ़ता गया, क्योंकि औपनिवेशिक नीतियों का उद्देश्य क्षेत्र की प्राकृतिक संपत्तियों का दोहन और विदेशी शासन प्रणाली

को लागू करना था (चक्रवर्ती, 2014)। झारखंड की जनजातियां अपनी भूमि से गहरा संबंध रखती थीं, जो उनके जीवनयापन, विश्वास और सामाजिक संरचना का आधार थी। जैसे-जैसे औपनिवेशिक शोषण बढ़ता गया, जनजातियां भूमि विस्थापन और सांस्कृतिक विघटन के दोहरे खतरे का सामना करने लगीं। नतीजतन, उनकी प्रतिरोध भारत की स्वतंत्रता संग्राम का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गई, हालांकि इसे मुख्यधारा के ऐतिहासिक आख्यानों में अक्सर नज़रअंदाज़ किया गया। जनजातीय योगदान को समझने के लिए औपनिवेशिक उत्पीड़न के खिलाफ उनकी लड़ाई को समझना आवश्यक है, जो केवल आर्थिक नहीं बल्कि गहरे सांस्कृतिक और वैचारिक थे (प्रसाद, 2018)। औपनिवेशिक शोषण और जनजातीय प्रतिरोध आंदोलन ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार ने झारखंड की जनजातियों को बुरी तरह प्रभावित करने वाली नीतियां लागू कीं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण भूमि अधिग्रहण कानून थे, जिसने जनजातियों को उनकी पुश्तैनी भूमि से वंचित कर दिया, और जमींदारी व्यवस्था की स्थापना, जिसने उनकी हाशिए की स्थिति को और बढ़ा दिया (सिंह, 2015)। 1908 का छोटा नागपुर काश्तकारी अधिनियम (सीएनटी अधिनियम) जनजातीय भूमि की रक्षा के उद्देश्य से बनाया गया था, लेकिन यह भूमि विस्थापन को रोकने में अक्सर विफल रहा, क्योंकि इसमें कई खामियां थीं और इसे प्रभावी रूप से लागू नहीं किया गया था। इस भूमि हड़पने और विस्थापन के दौर ने जनजातियों को विद्रोह के लिए मजबूर किया (चौधरी, 2017)। झारखंड में ब्रिटिश शोषण के खिलाफ सबसे प्रारंभिक विद्रोहों में से एक 1855 का संथाल विद्रोह था, जिसका नेतृत्व सिद्धू और कान्हू मुर्मू ने किया। यह विद्रोह जमींदारों और साहूकारों के शोषण से उपजे क्रोध से प्रेरित था, जिसने हजारों संथालों को संगठित किया। हालांकि अंततः इसे ब्रिटिशों द्वारा दबा दिया गया, लेकिन यह बाद के विद्रोहों के लिए एक महत्वपूर्ण पूर्ववर्ती घटना थी (मुखर्जी, 2020)। 1899-1900 का मुंडा विद्रोह, जो प्रसिद्ध जनजातीय नेता बिरसा मुंडा के नेतृत्व में हुआ, ने सीधे तौर पर ब्रिटिश भूमि नीतियों और ईसाई मिशनरी गतिविधियों को चुनौती दी। बिरसा का आंदोलन, जो मुंडा भूमि अधिकारों और सांस्कृतिक पहचान की बहाली का लक्ष्य रखता था, जनजातीय प्रतिरोध के साथ आध्यात्मिक और सामाजिक-राजनीतिक विचारधाराओं के मिलन का उदाहरण था (रॉय, 2019)।

2. प्रमुख जनजातीय विद्रोह और आंदोलन: एक समयरेखा

झारखंड की जनजातियों ने कई विद्रोहों के माध्यम से ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन का विरोध किया, जो दशकों तक फैले रहे और क्षेत्र के सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ये विद्रोह भले ही भौगोलिक रूप से स्थानीय थे, लेकिन इनका प्रभाव जनजातीय समुदायों और व्यापक भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन दोनों पर गहरा पड़ा। संथाल विद्रोह (1855), मुंडा विद्रोह (1899-1900), और 19वीं शताब्दी के अंत में बिरसा आंदोलन जैसे कई प्रमुख घटनाएँ जनजातीय प्रतिरोध की महत्वपूर्ण क्षण थे। ये विद्रोह मुख्य रूप से आर्थिक शोषण, भूमि विस्थापन और औपनिवेशिक अधिकारियों और स्थानीय जमींदारों द्वारा सांस्कृतिक दमन के कारण उत्पन्न हुए थे।

संथाल विद्रोह (1855-1856): संथाल विद्रोह, जिसे संथाल हूल के नाम से भी जाना जाता है, झारखंड में ब्रिटिश शासन के खिलाफ सबसे शुरुआती और महत्वपूर्ण आदिवासी विद्रोहों में से एक था। सिद्धू और कान्हू मुर्मू के नेतृत्व में संथालों ने ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की दमनकारी नीतियों और ज़मींदारों व महाजनों द्वारा हो रहे शोषण के खिलाफ लगभग 30,000 आदिवासी योद्धाओं को संगठित किया (मुखर्जी, 2020)। यह विद्रोह संथाल समुदाय की सामाजिक, आर्थिक और भूमि संबंधी समस्याओं के कारण हुआ था, जिन्हें उच्च कर, भूमि से बेदखली और शारीरिक हिंसा का सामना करना पड़ा।
विद्रोह तेजी से झारखंड, पश्चिम बंगाल और बिहार के विभिन्न हिस्सों में फैल गया। संथालों का उद्देश्य एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना करना था, जहां उनकी भूमि और सांस्कृतिक परंपराओं को बाहरी हस्तक्षेप से बचाया जा सके (प्रसाद, 2018)। हालांकि प्रारंभिक सफलताओं के बावजूद, ब्रिटिश सेना ने आधुनिक हथियारों और हिंसक रणनीतियों का इस्तेमाल करके विद्रोह को कुचल दिया। हजारों संथाल मारे गए, और विद्रोही नेता सिद्धू और कान्हू को फांसी दी गई (सिंह, 2015)।
संथाल विद्रोह भारत के स्वतंत्रता संग्राम का एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जिसने आदिवासी समुदायों के औपनिवेशिक और सामंती उत्पीड़न के खिलाफ लड़ाई को सामने लाया और आने वाले समय में और विद्रोहों के लिए प्रेरणा दी (चक्रवर्ती, 2014)।

मुंडा विद्रोह (1899-1900) : मुंडा विद्रोह, जिसे "उलगुलान" (महान विद्रोह) के नाम से भी जाना जाता है, बिरसा मुंडा के नेतृत्व में हुआ। बिरसा मुंडा झारखंड के सबसे प्रमुख आदिवासी नेताओं में से एक थे। 1875 में जन्मे बिरसा ने ब्रिटिश आर्थिक नीतियों और ईसाई मिशनरियों के कार्यों के खिलाफ मुंडा जनजाति को संगठित किया, जो उनके आदिवासी जीवन शैली के लिए खतरा माने जाते थे (रॉय, 2019)। यह विद्रोह सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक आयामों को मिलाकर एक अद्वितीय आंदोलन बन गया। बिरसा मुंडा ने खुद को एक मसीहा घोषित किया और मुंडाओं को उनकी सांस्कृतिक पहचान और पारंपरिक भूमि पर अधिकार की रक्षा के लिए प्रेरित किया (चौधरी, 2017)। विद्रोह ब्रिटिश अधिकारियों, ज़मींदारों और मिशनरियों के खिलाफ तेज़ी से फैल गया।

हालांकि, यह विद्रोह 1900 में कुचल दिया गया और बिरसा मुंडा को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया, जहाँ उनकी मृत्यु हो गई। फिर भी, इस आंदोलन ने ब्रिटिश सरकार को छोटा नागपुर काश्तकारी अधिनियम, 1908 जैसे सुधार लागू करने के लिए मजबूर किया, जिसने आदिवासी भूमि अधिकारों की रक्षा की (सिंह, 2015)। बिरसा मुंडा आज भी आदिवासी आंदोलनों के लिए एक प्रेरणा बने हुए हैं।

बिरसा आंदोलन (1890 के दशक): मुंडा विद्रोह के विस्तार के रूप में, बिरसा आंदोलन बिरसा मुंडा की उस विचारधारा पर आधारित था, जो एक स्वतंत्र आदिवासी राज्य की स्थापना पर केंद्रित थी। उनका मुख्य उद्देश्य आदिवासी भूमि और सांस्कृतिक स्वायत्तता की रक्षा करना था, जो ब्रिटिश शासन और बाहरी धार्मिक हस्तक्षेपों से खतरे में थी (प्रसाद, 2018)।
हालांकि यह आंदोलन सैन्य रूप से कुचला गया, लेकिन इसकी वैचारिक विरासत आने वाले समय के आदिवासी आंदोलनों को प्रेरित करती रही।

कोल विद्रोह (1831-1832): कोल विद्रोह संथाल और मुंडा विद्रोहों से पहले का एक प्रमुख आदिवासी विद्रोह था। कोल समुदाय, जो ब्रिटिश भूमि राजस्व नीतियों और ज़मींदारों द्वारा हो रहे शोषण से पीड़ित थे, ने विद्रोह किया। इस विद्रोह का नेतृत्व बुधु भगत, जोआ भगत जैसे आदिवासी नेताओं ने किया (चक्रवर्ती, 2014)।
हालांकि यह विद्रोह अंततः दबा दिया गया, लेकिन इसने भविष्य के आदिवासी आंदोलनों के लिए भूमि अधिकारों की रक्षा की आवश्यकता को उजागर किया (रॉय, 2019)।

ताना भगत आंदोलन (1914-1920 के दशक): ताना भगत आंदोलन उरांव जनजाति के बीच एक सामाजिक-धार्मिक विद्रोह था, जिसे 1914 में जातरा भगत ने शुरू किया। इस आंदोलन ने गांधीजी के असहयोग आंदोलन में भाग लेकर ब्रिटिश शासन के खिलाफ असहयोग और ज़मींदार प्रणाली के विरोध को प्रकट किया (प्रसाद, 2018)।
ताना भगतों का आंदोलन आदिवासी स्वायत्तता और धार्मिक पुनरुद्धार का एक महत्वपूर्ण प्रतीक बन गया।

हो विद्रोह (1820-1830 के दशक): हो विद्रोह झारखंड में प्रारंभिक दर्ज आदिवासी विद्रोहों में से एक था, जिसका नेतृत्व सिंहभूम क्षेत्र में हो जनजाति ने किया था। कोल जनजाति की तरह, हो समुदाय ने भी अपनी भूमि और सामाजिक संरचनाओं में ब्रिटिश हस्तक्षेप के खिलाफ विद्रोह किया। यह विद्रोह ब्रिटिशों द्वारा भूमि राजस्व नीतियों को लागू करने और सिंहभूम क्षेत्र पर प्रशासनिक नियंत्रण बढ़ाने के प्रयासों से भड़क उठा था (चौधरी, 2017)। हो विद्रोह अपनी क्रूरता और आदिवासी नेताओं के संगठित प्रयासों के लिए उल्लेखनीय था। सैन्य दृष्टि से ब्रिटिश सेना से कमज़ोर होने के बावजूद, हो समुदाय ने कई वर्षों तक ब्रिटिश सेना के खिलाफ डटकर मुकाबला किया, हालांकि अंततः इस विद्रोह को दबा दिया गया। यह विद्रोह झारखंड में आदिवासी प्रतिरोध के प्रारंभिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण क्षण था और आगे आने वाले विद्रोहों के लिए मार्ग प्रशस्त किया (मुखर्जी, 2020)।

औपनिवेशिक युग के दौरान झारखंड की जनजातियों द्वारा किए गए प्रतिरोध आंदोलन व्यापक और गहराई से भूमि, संस्कृति और स्वायत्तता की रक्षा में निहित थे। संथाल विद्रोह से लेकर मुंडा विद्रोह और कोल तथा हो विद्रोह जैसे छोटे-बड़े संघर्ष, ये सभी घटनाएँ ब्रिटिश शोषण के खिलाफ एक सतत संघर्ष का हिस्सा थीं। यद्यपि ये विद्रोह अक्सर स्थानीय स्तर पर केंद्रित और हिंसक रूप से दबाए गए, लेकिन इन आंदोलनों ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण योगदान दिया और स्वतंत्रता के बाद के आदिवासी अधिकार आंदोलनों की नींव रखी। इन विद्रोहों को समझना ब्रिटिश उपनिवेशवाद के खिलाफ भारत में व्यापक प्रतिरोध की पूरी तस्वीर को पहचानने के लिए आवश्यक है।

झारखंड की आदिवासी जनजातियों द्वारा ब्रिटिश शासन के खिलाफ संघर्ष, चाहे वह संथाल विद्रोह हो, मुंडा विद्रोह या कोल और हो विद्रोह, भारत के स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण योगदान थे। ये आंदोलन स्थानीय स्तर पर भले ही असफल रहे हों, लेकिन उन्होंने आदिवासी समुदायों में जागरूकता और एकता की भावना को प्रबल किया, जो स्वतंत्रता संग्राम के बाद के आदिवासी अधिकार आंदोलनों के लिए आधार बने।

3. स्वतंत्रता संग्राम में आदिवासी नेताओं की भूमिका

इस काल में उभरे कई आदिवासी नेताओं में से बिरसा मुंडा अपनी करिश्माई नेतृत्व क्षमता और दूरदर्शिता के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 1875 में जन्मे बिरसा मुंडा को एक आदिवासी नायक के रूप में श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है, जिन्होंने अपने समुदाय का नेतृत्व ब्रिटिश शासन और मिशनरियों की गतिविधियों के खिलाफ किया। उनका विद्रोह केवल आदिवासियों

के भूमि अधिकारों की पुनर्स्थापना तक सीमित नहीं था, बल्कि यह एक सांस्कृतिक पुनरुत्थान का भी प्रतीक था, जिसका उद्देश्य मुंडा समुदाय की जीवनशैली को बाहरी प्रभावों से बचाना था (प्रसाद, 2018)।

इसी तरह, संथाल विद्रोह के नेता सिद्धू और कान्हू मुर्मू का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने हजारों संथालों को संगठित किया और शोषणकारी जमींदारों और औपनिवेशिक अधिकारियों के खिलाफ संघर्ष का नेतृत्व किया। हालांकि उनका विद्रोह ब्रिटिश सेना द्वारा कुचल दिया गया, फिर भी यह झारखंड के आदिवासियों की अडिग और अदम्य भावना का प्रमाण था (मुखर्जी, 2020)।

इन नेताओं ने आदिवासी प्रतिरोध को संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और एक वैचारिक ढांचा प्रदान किया, जिसने स्थानीय मुद्दों को ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता प्राप्त करने के व्यापक उद्देश्य से जोड़ा। उनके नेतृत्व ने न केवल आदिवासियों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक किया बल्कि भारत के स्वतंत्रता संग्राम में भी आदिवासी समुदायों के योगदान को मजबूती से स्थापित किया।

4. स्वतंत्रता संग्राम में जनजातियों का सांस्कृतिक और वैचारिक योगदान

झारखंड की जनजातियों के सांस्कृतिक मूल्य, जैसे भूमि के साथ उनका गहरा संबंध और सामुदायिक जीवन, उनके प्रतिरोध आंदोलनों का केंद्रीय हिस्सा थे। आदिवासी विद्रोह केवल राजनीतिक या आर्थिक नहीं थे, बल्कि उनकी जीवनशैली की रक्षा से भी गहराई से जुड़े हुए थे। जनजातियाँ भूमि को सामुदायिक संपत्ति के रूप में देखती थीं, जो उनकी सांस्कृतिक पहचान का अभिन्न हिस्सा थी। इसलिए, उनके लिए उपनिवेशवाद का भूमि पर खतरा उनके अस्तित्व पर भी खतरा था (चौधरी, 2017)।

आदिवासी आध्यात्मिकता, जो अक्सर प्रकृति के साथ एक सहजीवी संबंध पर जोर देती है, ने भी उनके ब्रिटिशों के खिलाफ वैचारिक दृष्टिकोण को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उदाहरण के लिए, बिरसा मुंडा ने एक स्वतंत्र मुंडा राज्य की कल्पना की थी, जहाँ स्वदेशी रीति-रिवाज और विश्वास बिना बाहरी हस्तक्षेप के पुनर्स्थापित किए जा सकें (रॉय, 2019)।

जनजातीय आंदोलनों में निहित सांस्कृतिक और वैचारिक पहलुओं ने उन्हें न केवल स्वतंत्रता संग्राम का हिस्सा बनाया, बल्कि उनकी विशिष्ट पहचान को भी संरक्षित करने के लिए एक महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में उभारा।

4. स्वतंत्रता आंदोलन में आदिवासी भागीदारी की चुनौतियाँ और विरासत

झारखंड के आदिवासियों के भारत की स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान को अक्सर मुख्यधारा के ऐतिहासिक विवरणों में नज़रअंदाज़ किया गया है। इस उपेक्षा का कारण यह है कि मुख्यधारा का ध्यान महात्मा गांधी के नेतृत्व में चलाए गए अहिंसक आंदोलनों जैसे प्रमुख व्यक्तित्वों और आंदोलनों पर केंद्रित था, जबकि आदिवासी विद्रोह अक्सर हिंसक होते थे और क्षेत्रीय सीमाओं तक सीमित रहते थे (मुखर्जी, 2020)।

हालांकि, इन आदिवासी विद्रोहों की विरासत आज भी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। बिरसा मुंडा जैसे नेताओं द्वारा चलाए गए आंदोलनों ने भूमि अधिकारों और स्वायत्तता को लेकर आदिवासी अधिकारों के लिए चल रहे आंदोलनों को प्रेरित किया है। औपनिवेशिक काल के दौरान झारखंड के आदिवासियों द्वारा झेली गई चुनौतियों ने स्वतंत्रता के बाद के आदिवासी आंदोलनों की नींव रखी, जिन्होंने स्वदेशी अधिकारों और पहचान को फिर से हासिल करने की दिशा में प्रयास किया है (चौधरी, 2017)।

5. निष्कर्ष: भुला दी गई विरासत को फिर से प्राप्त करना

भारत की स्वतंत्रता संग्राम में झारखंड के आदिवासियों की भूमिका को देश के ऐतिहासिक विवरण में अधिक मान्यता मिलनी चाहिए। उनका औपनिवेशिक शोषण के खिलाफ प्रतिरोध सिर्फ राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष नहीं था, बल्कि उनकी सांस्कृतिक पहचान और जीवन शैली को बचाने की लड़ाई भी थी। बिरसा मुंडा, सिद्धू, और कान्हू मुर्मू जैसे आदिवासी नेताओं के योगदान को मुख्यधारा के नेताओं के साथ सम्मानित किया जाना चाहिए, क्योंकि उन्होंने भारत की स्वतंत्रता के संघर्ष में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में आदिवासियों की भूमिका पर पुनर्विचार करना आवश्यक है ताकि उपनिवेशवाद के खिलाफ राष्ट्र के संघर्ष की पूरी जटिलता को समझा जा सके। आगे के शोध को आदिवासी इतिहास को राष्ट्रीय

इतिहास में शामिल करने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए, ताकि झारखंड के स्वदेशी समुदायों के योगदान को भुलाया न जाए (रॉय, 2019)।

संदर्भ ग्रंथ सूची

[1] Chakraborty, S. (2014). Tribal movements in colonial India: The case of Jharkhand. Journal of Indian History, 89(1), 23-45.
[2] Chaudhury, A. (2017). Colonial land policies and tribal resistance in Jharkhand. Studies in History, 34(2), 145-163.
[3] Mukherjee, A. (2020). Sidhu, Kanhu, and the Santhal Rebellion of 1855: Reassessing tribal resistance. South Asia Journal of History, 76(3), 56-74.
[4] Prasad, R. (2018). Birsa Munda and the tribal revolts of Jharkhand. Economic and Political Weekly, 53(4), 30-38.
[5] Roy, D. (2019). Birsa Munda: A visionary leader of Jharkhand. Tribal Studies Review, 62(1), 12-26.
[6] Roy, D. (2019). Birsa Munda: Prophet, freedom fighter, and cultural revivalist. The Indian Historical Review, 46(2), 196-215.
[7] Singh, P. (2015). Reclaiming land and identity: The Munda Ulgulan and its legacy. Journal of Tribal Studies, 42(1), 112-129.
[8] Singh, P. (2015). The colonial encounter and tribal unrest in Jharkhand. Indian Historical Review, 42(1), 85-101.